R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-8 अगस्त 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

अगस्त का E - अंक

वात्सल्य पर्व : रक्षाबन्धन

अद्‌भुत निर्ग्रन्थता!

अहा! वे दृश्य कैसे होंगे। जब कुन्दकुन्दस्वामी और अमृतचन्द्रस्वामी आदि अनेक धर्म धुरन्धर, दिगम्बर सन्त हाथ में कमण्डल और मोरपिच्छी लेकर इस भरतभूमि में विचरते होंगे और ऐसा आत्मवैभव जगत के जीवों को दिखाते होंगे! ये वीतरागमार्गी सन्त तो मानो सिद्धपद को साथ ही लेकर घूमते थे... इनकी परिणति अन्तर्मुख होकर प्रतिक्षण सिद्धपद से मिलती थी। ऐसे मुनियों ने तीर्थङ्करदेवों का शासन टिकाया है। **(- आत्मवैभव (गुजराती), पृष्ठ 409)**

दिगम्बर सन्तों को देखकर धर्मी को ऐसा भाव होता है कि अहो! धन्य आपका अवतार! धन्य हूँ मैं कि आपके दर्शन हुए। धन्य आपकी मुनिदशा!! जिस जीव को इस प्रकार विनय-नम्रता का भाव नहीं आता और गौरव करता है, अभिमान से वर्तता है तो वह जीव सम्यक्त्व से रहित मिथ्यादृष्टि है। **(अष्टपाहुड़ प्रवचन, 184)**

आहाहा! जिन्हें आत्मज्ञान हुआ है, आनन्द का अनुभव हुआ है और जिन्हें राग से आत्मा की भिन्नता भासित हुई है, ऐसे सन्त का नाम आने पर भी रोम-रोम उल्लसित हो जाता है। आहाहा! ऐसे पंच परमेष्ठी को वन्दन करते हुए भी रोमांच हो जाता है।

(बहिनश्री के वचनामृत, प्रवचन, पृष्ठ 208)

छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते हुए मुनिराज के पधारने पर श्रावकों को ऐसा उल्लास आता है कि अहो! **हमारे आँगन में कल्पवृक्ष आया;** इस प्रकार उस प्रसङ्ग में उनका उल्लास बढ़ जाता है।

(पञ्चास्तिकाय प्रवचन, गाथा 159, पृष्ठ 170)

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-8 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) अगस्त 2021

वात्सल्य पर्व पर विशेष

श्रीजिनसेन और गुणभद्र से....

श्रीजिनसेन और गुणभद्र से हमने सुनी कहानी है।
हुआ उपसर्ग महान तदपि, वे अकम्प रहे महाज्ञानी है ॥
श्रावण की पूरणमासी को, उपसर्गविजयी वे ध्यानी है।
रक्षाबन्धन पर्व चला, उस घटना की यही निशानी है॥
अंग वात्सल्य की महिमा, अब हमको तुम्हें बतानी हैं।
समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड में भी जिसे बखानी है॥
हुआ उपसर्ग महान तदपि, वे अकम्प रहे महाज्ञानी है॥ टेक॥

अवन्ति देश की उज्यिनी नगरी के वे थे मन्त्री चार।
बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद, शुक्र करते थे बड़ा जो अत्याचार॥
संघ अकम्पनाचार्य मुनि का जब उज्जयिनी से हुआ विहार।
मन्त्रियों ने जिनशासन का तब किया बड़ा मिथ्या प्रचार॥
श्रुत अभ्यासी श्रुतसागर से हुये पराजित अज्ञानी है।
घोर शर्म से श्रीवर्मा के समक्ष भये पानी पानी है॥
श्रीजिनसेन और गुणभद्र से हमने सुनी कहानी है।
हुआ उपसर्ग महान तदपि वे अकम्प रहे महाज्ञानी है॥टेक॥

हारे-थके भये लज्जित मन्त्रि को उज्जयिनी से दिया निकाल।
कुरु प्रदेश की राजधानी हस्तिनापुर में लिया था डेरा डाल॥
राजा पद्म का हृदय जीत, मन्त्री बन बैठे फिर वे चार।
समय आने पर मनचाहा वरदान लेने का किया विचार॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्री कश्यप,
चेतन जैन, बडोदरा
हस्ते **श्री अजित जैन,**
बडोदरा (गुज०)

क्या - कहाँ

पहले महाव्रत लेना, वह कर्तव्य नहीं 6
ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व 9
श्री समयसार नाटक 14
आत्मा कौन है और 22
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप 29
आचार्यदेव परिचय शृंखला 30
समाचार-दर्शन 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

काल बीतने पर अकम्पनाचार्य, पहुँचे कुरु की रजधानी हैं।
कर षडयन्त्र उन मन्त्रियों ने, कि मुनि को सीख सिखानी है॥
श्रीजिनसेन और गुणभद्र से हमने सुनी कहानी है,
हुआ उपसर्ग महान तदपि वे अकम्प रहे महाज्ञानी है।टेक॥

फिर पद्मराज के पास मन्त्री ने, सात दिवस का मांगा राज्य।
बाड़ी में बन्द किया मुनियों को, जला दिया सारा साम्राज्य॥
उठा धुंआ,दुर्गन्ध बड़ी, मुनियों पर आया संकट भारी॥
भये आकुलित नगर हस्तिना के सारे नर अरु नारी॥
देख विपत्ति को तब क्षुल्लक, पुष्पकदेव ने यह ठानी है।
मुनि विष्णुकुमार से ही होनी इस संकट की हानि है॥
श्रीजिनसेन और गुणभद्र से हमने सुनी कहानी है,
हुआ उपसर्ग महान तदपि वे अकम्प रहे महाज्ञानी है।टेक॥

मुनि विष्णु को मिली सूचना, उपसर्ग मेटने का किया प्रकल्प।
कर प्रयोग ऋद्धि का अपनी, वामन रूप धरा लघु अल्प॥
फिर मन्त्री को कर प्रसन्न, तीन कदम का माँगा राज्य।
धर विशाल रूप दो कदम में, ढाई द्वीप को दिया था नाप॥
देख शक्ति मुनि की फिर मन्त्रि हुए शर्म से चकनाचूर।
माँगी क्षमा दुष्कृत्य के अपने, उपसर्ग किया मुनियों का दूर॥
अकम्पनाचार्य आदि मुनियों की, स्वरूपगुप्ति ही निशानी है।
श्रमण धर्म की ये महिमा, जगविख्यात प्रमानी है।टेक॥

श्री जिनसेन और गुणभद्र से हमने सुनी कहानी है,
हुआ उपसर्ग महान तदपि वे अकम्प रहे महाज्ञानी है।
ऐसे महामुनि के चरणों में, 'अंकुर'को शीष टिकानी है।
हुआ उपसर्ग महान तदपि वे अकम्प रहे महाज्ञानी है।टेक॥

रचनाकार- अंकुर शास्त्री, भोपाल

पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, गाथा 29 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

पहले महाव्रत लेना, वह कर्तव्य नहीं

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम्।।२९।।

पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है। मुक्ति, वह पुरुष की सिद्धि कहलाती है। मोक्षदशा, वह पुरुषार्थ की सिद्धि, उसका उपाय। उसमें पहले सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती है। पहला, सम्यग्दर्शन अर्थात् जो जीवादि तत्त्व हैं, उनसे विपरीतश्रद्धारहित—जैसे तत्त्व हैं, ऐसा—ज्ञायकभाव आत्मा; रागादि आस्रव पुण्यतत्त्व इत्यादि जैसे हैं, वैसे स्वसन्मुख होकर आत्मा की सम्यग्दर्शनदशा प्रगट करना, वह प्रथम में प्रथम धर्मी का कर्तव्य है। समझ में आया? समझ में आया? पहले महाव्रत लेना, वह कर्तव्य नहीं है-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : चरणानुयोग...

पूज्य गुरुदेवश्री : चरणानुयोग में इस दर्शनपूर्वक की बात है। सम्यग्दर्शन, आत्मा असंख्यप्रदेशी दल, अनन्त गुण का धाम, एकरूप के स्वसन्मुख दृष्टि करके अनुभव करना, यह पहले में पहला धर्म करनेवाले का कर्तव्य है। कहो, समझ में आया? उस सम्यग्दृष्टि को आठ अंग होते हैं—ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसे धर्मात्मा को आठ अंग, आठ लक्षण कहो या आठ आचार कहो। उन आठ में छह आ गये हैं; आज सातवाँ है। वात्सल्य अंग। धर्मी, जिसे आत्मा की पूर्ण आनन्दस्वरूप की प्रतीति आयी है, उसे धर्मात्मा के प्रति और अपने स्वभाव के प्रति प्रेम होता है। समझ में आया? यह सातवाँ बोल है।

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम्।।२९।।

मोक्षसुखरूप सम्पदा के कारणभूत... मोक्षसुख अर्थात् आत्मा की परम आनन्ददशा-ऐसी जो निज सम्पदा। मोक्षसुखरूपी सम्पदा, आत्मा की

अतीन्द्रिय आनन्दरूपी, आत्मा की अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्दरूपी अवस्था, वह मोक्षसुख की सम्पदा कहलाती है। यह उसके कारणभूत उपाय की बात है न? **कारणभूत धर्म में...** कैसा धर्म है? कि अहिंसा। जिसमें रागरहित आत्मा की अहिंसा, उसका नाम अहिंसा जैनधर्म कहलाता है। कहो, समझ में आया? अहिंसा अर्थात् रागरहित, विकल्परहित आत्मा की अहिंसकदशा, निर्मल अरागीदशा, वह जैनधर्म है, वह अहिंसाधर्म है। उसमें इसे प्रेम चाहिए, प्रीति चाहिए।

और सभी साधर्मीजनों में... यह बाहर से लिया। जिन्हें आत्मधर्म / स्वभावदृष्टि प्रगट हुई है—ऐसे साधर्मी। समस्त शब्द से चौथे, पाँचवें, छठवें आदि (गुणस्थानवर्ती) हों, **और सभी साधर्मीजनों में निरन्तर उत्कृष्ट वात्सल्य...** देखो। जिसे निरन्तर और उत्कृष्ट प्रेम होता है। अपना परम पवित्र रागरहित अहिंसा स्वभाव है। उसकी इसे दृष्टि है; इसलिए उसकी इसे प्रीति होती है। समझ में आया? आत्मा आनन्द और ज्ञायकस्वरूप पूर्ण शुद्ध, उसके अन्तर, ये पुण्य के विकल्प हैं, उनसे रहित, स्वभाव की दृष्टि सहित, अरागीदशा की उत्पत्ति (होना), उसे अहिंसा जैनधर्म कहते हैं। यह अहिंसा जैनधर्म है। समझ में आया?

ऐसे अहिंसा धर्म में समस्त साधर्मी... नीचे कहेंगे। समस्त साधर्मीजनों—सम्यग्दृष्टि हो या सच्चे श्रावक हों या सच्चे मुनि हों—समस्त जनों में सतत् निरन्तर... वापस किसी समय प्रेम और किसी समय द्वेष—ऐसा नहीं। समझ में आया? सतत और वह भी उत्कृष्ट। जो कुटुम्बीजनों के प्रति प्रेम है, स्त्री-कुटुम्ब; उनकी अपेक्षा इन साधर्मीजनों के प्रति उसे उत्कृष्ट प्रेम होता है। समझ में आया?

धर्मात्मा के प्रति, घर के कुटुम्ब की स्त्री, कुटुम्ब की अपेक्षा भी... घर में समकिती साधर्मी हो तो वह अलग बात है, वरना घर की स्त्री, पुत्र और पिता की अपेक्षा भी साधर्मी के प्रति उसे उत्कृष्ट प्रेम होता है। कहो! समझ में आया इसमें? समस्त साधर्मी, 'समस्त' शब्द से यह। सर्वेषु है न? चौथे गुणस्थान से लेकर लिया है—सम्यग्दृष्टि जीव हो, श्रावक हो, मुनि हो या अविरत

सम्यग्दृष्टि हो—सबमें जिसे प्रेम होता है। वह कैसा ? निरन्तर, कैसा ? दूसरों की अपेक्षा ऊँचा।

वात्सल्य अथवा प्रीति का आलम्बन करना चाहिए। इसे प्रेम का अवलम्बन लेना चाहिए। कहो, समझ में आया इसमें ? अपना निर्विकल्प आत्मस्वभाव, उसके प्रेम का अवलम्बन लेना और बाह्य में साधर्मी के प्रति ऐसे प्रेम का भाव / शुभराग होता है। इसमें निश्चय और व्यवहार दो वात्सल्य की व्याख्या है। कहो, समझ में आया इसमें ?

टीका : मोक्षसुख की सम्पदा के कारणभूत... मोक्षसुख। मोक्ष अर्थात् परम शुद्धता का प्रगट होना। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता।' श्रीमद् में आता है न ? निज परमात्मदशा शुद्ध जैसा स्वभाव है, वैसी दशा प्रगट होना—पूर्ण आनन्द की दशा प्रगट होना, इसका नाम मोक्ष। अतः कहते हैं कि **मोक्षसुख की सम्पदा...** यह जीव की सम्पदा है। कहो, समझ में आया ? यह शरीर, लक्ष्मी आदि कोई आत्मा की सम्पदा नहीं है; ये तो जड़, पर है। अपने पूर्ण आनन्द की, सुख की दशारूप सम्पदा, मोक्षरूपी लक्ष्मी। लो! यह सम्पदा। इसके कारणभूत उपाय... उपाय की बात है न इसकी ? पुरुषार्थसिद्धि, पुरुषार्थसिद्धि अर्थात् मोक्षसुख; उसका उपाय यह, उपाय की बात कारणभूत है।

हिंसारहित जिनप्रणीत धर्म में... हिंसारहित की व्याख्या यह है। परजीव को न मारना, वह कोई, ऐसी कोई बात यह नहीं। जैनधर्म में वह कुछ है नहीं। मारना, न मारना, यह आत्मा के अधिकार की बात है नहीं। आत्मा को नहीं मारना; राग से आत्मा मरता है। शुभ-अशुभराग होवे तो आत्मा के प्राणों का घात होता है। यह जैनधर्म नहीं। शुभ-अशुभराग रहित आत्मा के चैतन्य प्राण को श्रद्धा-ज्ञान-स्थिरता द्वारा जीवित रखने का नाम जिनप्रणीत अहिंसा धर्म कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? है ?

मोक्षसुख की सम्पदा का हेतु / कारण अर्थात् उपाय। निबन्धन में व्याख्या की है न ? **निबन्धने** अर्थात् कारणभूत। निबन्धन। शिवसुख लक्ष्मी का निबन्धन अर्थात् जिससे प्राप्त हो। भगवान आत्मा जैसा आनन्द उसका स्वभाव

.... शेष पृष्ठ 31 पर

ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व

[समयसार - सर्वविशुद्ध अधिकार के प्रवचनों से]

धर्म कैसे होता है ? और धर्मात्मा के श्रद्धा-ज्ञान कैसे होते हैं ? वह यहाँ समझाते है।

मेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा चैतन्यसूर्य है, उसमें परद्रव्य का संबंध अंशमात्र नहीं है। अरे, राग का एक कण भी मेरे स्वभाव का है—ऐसा ज्ञानी स्वप्न में भी नहीं मानते। किसी भी प्रकार ज्ञानी परद्रव्य को अपना नहीं मानते और निजस्वभाव में व्यवहार के-राग के कणमात्र को भी स्वीकार नहीं करते। पर के संबंध से रहित और राग से भी पार ऐसे सर्व प्रकार से विशुद्ध एक ज्ञानस्वभाव का ही धर्मी जीव अपने रूप से अनुभव करते हैं। उस स्वानुभव में व्यवहार का किंचित्मात्र अवलंबन नहीं है।

जिसप्रकार जगत के व्यवहार में 'यह मेरा ग्राम, यह मेरा देश'—ऐसा कहा जाता है; वहाँ वास्तव में कोई अपने को किसी ग्राम का या देश का स्वामी माने तो लोक में वह मूर्ख है। उसीप्रकार जीव, परद्रव्य को या परभाव को अपने स्वभाव का माने, वह परमार्थ में मूर्ख है। ज्ञानी निजस्वभाव में परभाव को किंचित् आदरणीय नहीं मानते। व्यवहार का-पराश्रय का किंचित् भी आदर करने जाये तो ज्ञानस्वभाव का अनादर होता है।

अरे भाई, तू शुद्धज्ञानतत्त्व; तेरी और आस्रव की एकता कैसी ? मैं तो ज्ञानतत्त्व हूँ, आस्रवतत्त्व ज्ञान से पृथक् है, वह मैं नहीं हूँ—इसप्रकार ज्ञानी दोनों का भेद जानता है। ऐसा भेद जानकर ज्ञानस्वभाव का आश्रय एवं उपासना करना, वह धर्म है।

चिदानंदस्वभाव की श्रद्धा या अनुभव करने में मुझे परद्रव्य कुछ भी सहायक हैं या व्यवहार का आश्रय कुछ सहायक है—ऐसा कोई माने तो वह जीव नि:शंकरूप से मिथ्यादृष्टि है। मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ और

ज्ञानस्वभाव के अवलंबन से ही उसकी श्रद्धा तथा अनुभव होता है, उसमें अन्य किसी का अवलंबन नहीं है।

जैसे—धूल के ढेर में शुद्ध स्फटिकमणि पड़ा हो; तो कहीं वह स्फटिकमणि धूल के ढ़ेर के साथ एकमेक नहीं हो गया है; उसीप्रकार धूल के ढ़ेर समान यह जो पुद्गल पिण्ड (शरीर), उसके बीच चैतन्यचिन्तामणि पड़ा है; वह कहीं पुद्गल पिण्ड के साथ एकमेक नहीं हुआ है। संयोग के ढ़ेर में चैतन्य भगवान दब नहीं गया है। एक परमाणु या त्रिलोकीनाथ परमात्मा—इन सर्व परद्रव्यों से मेरा आत्मा पृथक् है... अरे, सूक्ष्म राग की वृत्तियों (गुणभेद के व्यवहार की वृत्तियों) से भी चिदानंदस्वभाव पृथक् का पृथक् है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में ले, वही ज्ञानी है। आठवीं गाथा में कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप व्यवहार बीच में आता है, परंतु वह अनुसरण करनेयोग्य नहीं है; व्यवहार के अनुसरण से कहीं परमार्थ का अनुभव नहीं होता। इसलिये कहते हैं कि बुधजनों को आत्मज्ञान के सिवा अन्य कार्य में तत्पर नहीं होना चाहिये। व्यवहार बीच में आता है परंतु वह व्यवहार बढ़ाने जैसा नहीं है—उसकी रुचि करने योग्य नहीं है। जिसप्रकार मुनि लौकिक कार्यों का बोझ सिर पर नहीं रखते, उसीप्रकार ज्ञानी-धर्मात्मा व्यवहार के अवलंबन से मुझे लाभ होगा या इस व्यवहार के अवलंबन में मुझे दीर्घ काल तक रुकना पड़ेगा—ऐसी भावना ज्ञानी को नहीं है। अपने एक परमार्थ स्वभाव में ही मैं तत्पर हूँ, उसी के अवलंबन में रुचि, उत्साह और भावना है।

जो सम्यग्दर्शनरहित है वही परभाव की रुचि करता है और वही 'परद्रव्य में मेरा'—ऐसा मानता है। अरे, चैतन्यपिण्ड पवित्र शुद्ध है, उसमें अज्ञानी राग की चिकनाई लगाता है। अरे, मेरे चैतन्य में राग की चिकनाई नहीं है; मेरे चैतन्यतत्त्व पर परभाव का बोझ नहीं है; ऐसी श्रद्धा करके स्वसन्मुख हो तो आत्मा बिल्कुल हल्का हो जाये। जहाँ अकर्तृत्व प्रगट हुआ

और आत्मा साक्षीरूप से-ज्ञाताभावरूप से—परिणमित हुआ, वहाँ उसे क्या चिन्ता ? और काहे का बोझ ? सारा बोझ उसके सिर से उतर गया... और छुटकारे की हवा लग गई।

अरे जीव ! संतों ने तुझे तेरी ज्ञान निधि बतलाई, अब तू अकेला एकांत में (अर्थात् स्वभाव की गुफा में) जाकर उस ज्ञाननिधि का उपभोग करना। क्योंकि जगत में तो अनेक प्रकार के विविध प्रकृतियों के जीव हैं; किसी को रुचे किसी को न रुचे, वहाँ तू किसी के साथ वाद-विवाद में न पड़ना और स्व-गृह में बैठे-बैठे अंतर में अपनी ज्ञाननिधि को भोगना...स्वभाव सन्मुख होने में तत्पर होना; जगत की ओर देखने में मत रुकना।

आत्मा भूले तो क्या करे ? कि स्वयं अपने ज्ञान आनन्द का अनुभव छोड़कर विकार का अनुभव करता है और राग-द्वेष का कर्ता होता है; परंतु अपने भाव की भूमिका से बाहर तो वह कुछ नहीं करता। आत्मा राग-द्वेष करे और उसे कर्मबंध हो, वहाँ उस निमित्त-नैमित्तिक संबंध को देखकर उसमें अज्ञानी कर्ताकर्मपना मान लेता है। भाई, वस्तुस्वभाव का ऐसा नियम है कि एक का कार्य दूसरे में नहीं होता।

अरे, ऐसे वस्तुस्वभाव को जो नहीं जानते और पर में कर्तृत्व मानते हैं, वे जीव बेचारे पुरुषार्थ को हार गये हैं; निजस्वभाव के वेदन में उनका पुरुषार्थ नहीं चलता और परिणति बाह्य में ही फिरती रहती है। राग में भी एकमेक होना ज्ञान का स्वभाव नहीं है।—ऐसे स्वभाव को भूलकर तू अपने चैतन्य तेज को अज्ञान में कहाँ डुबोये दे रहा है ?

मिथ्यादृष्टि जीव को संबोधन करके आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि—अरे जीव ! तू अपने आत्मा को अकर्ता देख ! तेरा ज्ञान पर का कर्ता नहीं है—ऐसे ज्ञान को तू देख ! अपना कर्तृत्व अपने भाव में देख, परंतु पर में न देख। चेतन का कर्तृत्व चेतन में होता है, जड़ में नहीं होता। चेतन जो कार्य हो, वह चेतन ही होता है।

आत्मा में जो मिथ्यात्वादि भाव होते हैं, उनका कर्ता वह आत्मा ही है;

पुद्गल का उसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। विकार में पचास प्रतिशत कर्तृत्व आत्मा का और पचास प्रतिशत कर्म का—ऐसे दो कर्ता नहीं हैं। यदि दोनों इकट्ठे होकर करें तो उसका फल भी दोनों भोगें; परंतु अचेतन कर्म को तो कहीं सुख-दुःख का उपभोग है नहीं।

तथा जीव जिसप्रकार विकारभाव को करता है, उसीप्रकार यदि जड़कर्म को भी करे तो चेतन का कार्य चेतन ही होता है—इस न्याय से, उस जड़ कर्म को चेतनता का प्रसंग आ जायेगा।

यहाँ अस्ति-नास्ति से युक्ति द्वारा आचार्यदेव ने आत्मा और जड़ के स्पष्ट विभाग करके, परस्पर कर्ताकर्मपने का अत्यंत निषेध किया है। अज्ञानभाव की भी मर्यादा इतनी है कि वह अपने विकारभाव को करे, परंतु जड़ में तो कुछ भी नहीं कर सकता।

जीव निजस्वभाव से च्युत होकर पुद्गल कर्म के आश्रय से परिणमित होता है, तभी मिथ्यात्वादिभाव होते हैं और उन भावकर्मों का कर्ता जीव स्वयं है। तथा उससमय पुद्गलद्रव्य जीव के विकारी परिणाम का आश्रय करके (उसके निमित्त से) मिथ्यात्वादि कर्मरूप परिणमित होता है, वह अचेतन है, उसका कर्ता अचेतन है। जीव के भाव का कर्ता जीव, और अजीव के भाव का कर्ता अजीव है।

भाई, विकारभाव का संबंध आत्मा के साथ है; आत्मा के अस्तित्व में वह भाव होता है; इसलिये वह विकारभाव कोई दूसरा नहीं कराता परंतु तू ही अपने अपराध से उसका कर्ता है—ऐसा तू स्वीकार कर; और वह विकार तेरे स्वभावभूत नहीं है—ऐसा जानकर उसमें से एकत्वबुद्धि छोड़।

कर्म, आत्मा को विकार करायें—यह बात तो मूल में से, उखाड़ दी है; आत्मा और जड़ की अत्यंत भिन्नता है, उनके कार्य की अत्यंत भिन्नता है—उसका जिसे निर्णय नहीं है, वह तो पर से विमुख होकर कब स्वभावोन्मुख होगा? फिर अपने में भी ज्ञानभाव तथा रागभाव दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न है—इसका निर्णय तो अति सूक्ष्म है।

आचार्यदेव कहते हैं कि भाई, पर के साथ तू इतना अधिक संबंध मानता है कि पर मेरा हित-अहित करता है; परंतु परद्रव्य तो तुझे स्पर्श भी नहीं करता, वह तो तेरे स्वरूप से बाहर का बाहर ही रहता है। भाई, अपना उपयोग तू तत्त्वनिर्णय में लगा; परद्रव्य मुझे रोकता है—ऐसा मानकर यदि तू अटक जाता हो तो ऐसी जिन की आज्ञा नहीं है। जिन-आज्ञा तो ऐसी है कि—तू अपने स्वभाव का पुरुषार्थ कर, वहाँ कर्म स्वयंमेव हट जायेगा। तेरे गुण-दोष का उत्पादक दूसरा कोई नहीं। अज्ञानभाव से तू अपने दोष का कर्ता है, और ज्ञानभाव से उस विकार का कर्तृत्व दूर हो जाता है, इसलिये ज्ञानभाव से आत्मा का विकार अकर्ता है; पर के कर्तृत्व की तो बात ही नहीं है।

आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई! आत्मा के भाव को दूसरा कोई करता है, ऐसा यदि तू माने, तो आत्मा को सर्वथा अकर्ता ही माने तो उसमें जिनवाणी से विरुद्ध मान्यता द्वारा तू ही अपने आत्मा का घात करता है; उसमें तीव्र मिथ्यात्व के सेवन से आत्मा के गुणों का घात होता है। ऐसे आत्मघात से तुझे बचना हो और अपने गुण की रक्षा करना हो तो तू जिनवाणी के अनुसार वस्तुस्थिति को जान।

आत्मा स्वयं ही अपने विकारी या निर्मल भावों का कर्ता है। जो औदयिकभाव हैं, उन भावों को स्वतंत्ररूप से आत्मा ही करता है। धर्मरूप जो औपशमिकादि भाव हैं, उन भावों का कर्ता भी आत्मा स्वयं ही अपने छह कारकों से है, उसमें किन्हीं अन्य कारकों की अपेक्षा नहीं है। अहा, ऐसी स्वतंत्रता का जो निर्णय करे, वह स्वयं अपना घात कैसे करेगा? वह अकेले विकार के कर्तृत्व में कैसे रहेगा? वह तो स्वाश्रयपूर्वक ज्ञानभाव से विकार का कर्तृत्व छोड़कर सम्यग्दर्शनादि भावरूप परिणमित होगा।

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

सम्यग्दृष्टि का विलास वर्णन

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखै सरीर-घर,
भेदग्यानदृष्टिसौं विचारै वस्तु-वासतौ।
अतीत अनागत वरतमान मोहरस,
भीग्यौ चिदानंद लखै बंधमैं विलासतौ।।
बंधकौ विदारि महा मोह कौ सुभाउ डारि,
आतमाकौ ध्यान करै देखै परगासतौ।
करम-कलंक-पंकरहित प्रगटरूप,
अचल अबाधित विलोकै देव सासतौ।।13।।

अर्थः- कोई विद्वान् मनुष्य शरीररूपी घर को देखे और भेदज्ञान की दृष्टि से शरीररूपी घर में बसनेवाली आत्मवस्तु का विचार करे तो पहिले भूत, वर्तमान, भविष्यत् तीनों काल में मोह से अनुरंजित और कर्मबंध में क्रीडा करते हुए आत्मा का निश्चय करे, इसके पश्चात् मोह के बन्धन को नष्ट करे और मोही स्वभाव को छोड़कर आत्मध्यान में अनुभव का प्रकाश करे; तथा कर्म-कलंक की कीचड़ से रहित अचल, अबाधित, शाश्वत अपने आत्मदेव को प्रत्यक्ष देखे।

काव्य - 13 पर प्रवचन

अब समयसार कलश के 12 वें कलश का पद्यानुवाद रूप 13वाँ काव्य कहते हैं, जिसमें बनारसीदासजी ज्ञानी के विलास का वर्णन करते हैं-

दिव्यशक्ति का धारक देव अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति से विराजता है। भाई! तुझे उसकी खबर नहीं है।

जगत के जीव किसी के पास कुछ चमत्कार देखकर वहाँ तो देव आते हैं- ऐसा मानने लगते हैं; परन्तु भाई! तू तो अनादि-अनन्त शाश्वत देव है। उसके सामने तो देख!

कोई विद्वान पुरुष भेदज्ञान की दृष्टि से शरीररूपी घर और उसमें रहनेवाले चेतन को देखे तो उसे शरीर और आत्मा भिन्न ज्ञात होते हैं। शाश्वत् भगवान आत्मा का विचार करे तो पर्याय में वह मोह से रँगा हुआ दिखता है। पर की एकताबुद्धि से रंग गया है, कर्मों के बंधन में पड़ा है, परन्तु कर्म या कोई परद्रव्य उसको राग नहीं कराते– ऐसा पहले निश्चित करता है। वर्तमान में राग में रमा (एकता) करता है, वह जीव की अशुद्ध पर्याय है। वह कर्म या परद्रव्य के कारण अशुद्ध है– ऐसा नहीं है। स्वयं ही मोह में रँगा हुआ है। भूत, वर्तमान और भावी तीनों कालों में स्वयं मोह से रँगा और कर्म से बंधा है।

भगवान चिदानन्द प्रभु राग के रस में भीगा हुआ दिखता है। राग में लीनता करता है, वह आत्मा निश्चय से अशुद्ध पर्याय में है। उससें कहते हैं कि 'राणा रमतु मेल कटक आव्यो किनारे।' अब तेरे धर्म करने का काल आ गया है आतमराजा! अब तुझको यह राग की रमत नहीं शोभती, उसे छोड़ दे। अनादि से मोहकूप में पड़ा है, अब बाहर निकल जा! राग और आत्मा के बीच प्रज्ञारूपी छैनी मार! राग और आत्मा के दो टुकड़े हो जायेंगे। ऐसी भेदज्ञान की क्रिया करना, वह क्रिया है।

अज्ञानी को इस भेदज्ञान की क्रिया की सूझ नहीं पड़ती; अतः व्रत, तपादि बाह्यक्रिया करके राग का सेवन करता है और धर्म हुआ मानता है। उसे क्रिया में धर्म मनवानेवाले लुटेरे मिले हैं और स्वयं लुटता है उत्साह से। अब फरियाद किसके पास करनी ?

अब यदि स्वयं ही सद्गुरु के उपदेश से समझकर मोह को छोड़े और अन्दर चैतन्य स्वभाव तरफ झुककर, ध्यान में आत्मा को विषय बनाकर अनुभव करे तो कर्मकलंक कीचड़ से रहित अचल, अबाधित, शाश्वत– ऐसे अपने आत्मदेव का प्रकाश पावे। मोहजाल में राग की और विकल्प की एकता करता था, वह अब आत्मा की ओर झुकाव करे तो राग से भिन्न आत्मा का प्रकाश अनुभव में आवे– इसका नाम समकित है और यही धर्म है।

हमें तो छोटी उम्र से ही सम्प्रदाय में पुस्तके देते थे, उसमें लिखा होता था कि हमको मानो, वह समकित और व्रत पालन करो, वह चारित्र है। अरे ! वह लूटने का पंथ था। वह वीतराग का मार्ग नहीं। भाई ! वीतराग का मार्ग इसके कान में पड़ा नहीं। वीतराग का मार्ग मिलना बहुत दुर्लभ है। 'कमल' भक्ति में गाता है न !

चेतो जीवड़ा ! मानव भव दुर्लभ हो लाल..
दुर्लभ जो न आतम की बात। चेतो जीवड़ा..
दुर्लभ-दुर्लभ जैन अवतार, इसके साथ सद्गुरु छाया दुर्लभ रे लाल..
सरोवर काँठे रे मृगला तरस्या रे लाल
दोड़े हाँकी झाँझरा जलनी काज
अरे साँचा वारि (पानी) ऐने ना मले रे लाल।
ए ! मनना मृगला ने पाछा बालीजे रे लाल,
जोड़ी दो आतम सरोवरे आज,
ऐने मलसे आतम सुख अमूलाँ रे लाल..।

ऐसा गीत जोड़कर लड़को ने ललकारा था। मुम्बई घाटकोपर में पाँच-छह युवा विचारक तैयार हुए हैं और छह गायक तैयार हुए हैं। उसमें यह 'कमल' तो गायक के साथ-साथ विचारक भी है।

यहाँ कहते हैं कि राग की एकता की जेल तोड़। उसका विलास छोड़ और निज भगवान आत्मा के आनन्द का विलास कर तो तुझे समकित होगा और मोक्ष के बीज उगेंगे।

गुणगुणी अभेद हैं, यह विचारने का उपदेश करते हैं:-

सुद्धनयातम आतम की,
अनुभूति विज्ञान-विभूति है सोई ।
वस्तु विचारत एक पदारथ,
नाम के भेद कहावत दोई।।
यौं सरवंग सदा लखि आपुहि,

आतम-ध्यान करै जब कोई।
मेटि असुद्ध विभावदसा तब,
सुद्ध सरूपकी प्रापति होई ।।14।।

अर्थः- शुद्धनय के विषयभूत आत्मा का अनुभव ही ज्ञानसम्पदा है, आत्मा और ज्ञान में नामभेद है वस्तुभेद नहीं है। आत्मा गुणी है ज्ञान गुण है, सो गुण और गुणी को पहिचानकर जब कोई आत्म- ध्यान करता है तब उसकी रागादि अशुद्धदशा नष्ट होकर शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है।

भावार्थः- आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है, इनमें वस्तुभेद नहीं है। जैसे अग्नि का गुण उष्णता है, यदि कोई अग्नि और उष्णता को पृथक् करना चाहे तो नहीं हो सकते। उसीप्रकार ज्ञान और आत्मा का सहभावी सम्बन्ध है पर नामभेद अवश्य है कि यह गुणी है और यह उसका गुण है।।14।।

काव्य - 14 पर प्रवचन

अब श्री नाटक समयसार का 14वाँ काव्य प्रारम्भ होता है, जो समयसार कलश 13 के पद्यानुवाद के रूप में है।

शुद्धनय के विषयभूत आत्मा का अनुभव ही ज्ञान सम्पदा है। आत्मा और ज्ञान में नामभेद है, वस्तु भेद नहीं। आत्मा गुणी है, ज्ञान गुण है इसप्रकार गुणी को पहचानकर जब कोई आत्म ध्यान करता है, तब उसकी रागादि अशुद्धदशा नष्ट होकर शुद्धअवस्था प्राप्त होती है।

यहाँ गुण-गुणी अभेद हैं। यह विचारने का उपदेश किया है। यह जीवद्रव्य का स्वरूप है।

'शुद्धनयातम आतम की'- आत्मद्रव्य शुद्धनयस्वरूपी है। आत्मा शरीर, वाणी, मन से रहित है, पुण्य-पाप की स्थिति से रहित है और एक समय की पर्याय का भी जिसमें प्रवेश नहीं- ऐसा भगवान आत्मा नित्यानन्द स्वरूप ध्रुव वस्तु है। वही सम्यग्दर्शन का विषय है, ध्यान का ध्येय है। एक समय की पर्याय नहीं, किन्तु पर्यायवान वस्तु है। वही शुद्धनयस्वरूप आत्मा है।

नये मनुष्य को ऐसा लगे कि यह शुद्धनयस्वरूप आत्मा कौन होगा? भाई! यह एक आत्मपदार्थ है, अस्ति-स्वरूप वस्तु है, अनादि-अनन्त एक सदृश स्वभावी जो ध्रुव वस्तु है, उसको शुद्धनयस्वरूप आत्मा कहा है। उसकी अनुभूति होना, वही विज्ञान विभूति है, वह पर्याय है; क्योंकि अनुभव पर्याय में ही होता है और उसका विषय ध्रुव है।

जिसको धर्म करना हो, उसे चैतन्य के ध्रुवस्वरूप का अनुसरण करके अनुभव करना। वह अनुभव ही आत्मप्राप्ति अर्थात् समकितरूप धर्म है।

यहाँ वस्तु का अनुभव कहकर बाद में उसे ही ज्ञान का अनुभव कहेंगे; क्योंकि गुण और गुणी कोई भिन्न नहीं है।

'अनुभूति विज्ञान विभूति'- अर्थात् पूर्णस्वरूप शुद्ध आनन्दघन आत्मा की अनुभूति माने- ऐसे आत्मा का अनुसरण करके आनन्द का प्रकट होना, स्वसंवेदन में आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन होना; वह अनुभूति है। उसको ही समकित कहते हैं। उसके साथ विशेषपने ज्ञान-आनन्द की प्राप्ति होती है, वही आत्मा की विभूति-सम्पदा है। देखो! ये धनादि आत्मा की सम्पदा नहीं हैं। राग के विकल्प भी आत्मा की सम्पदा नहीं हैं।

धर्मी ऐसा भगवान आत्मा कि जिसमें पूर्ण ज्ञान, आनन्द का ध्रुवस्वभाव है, जो एकरूप है, सदृश है, नित्य है, अचल है -ऐसे भगवान आत्मा के सन्मुख होकर उसका अनुभव करना, वह धर्म है और उससे विपरीत पुण्य-पाप राग का अनुभव करना, वह विभाव का अनुभव है- वही संसार है, वही दु:ख है, वही मिथ्यात्व है और वही निगोद में जाने की रीत है।

यहाँ तो उस संसार से छूटकर मोक्ष में जाने के लिए अनुभव की विधि कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्द का पुंज है। उसकी अनुभूति वह आत्मा की लक्ष्मी-विभूति है। राग और निमित्त के आलंबन बिना, त्रिकाली द्रव्य के आलंबन से आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन हो, उसको स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा की प्राप्ति हुई कहते हैं। उसको ही यहाँ आत्मा की विभूति कहा है।

ज्ञान का अंश- वह शुद्धनय; उसका विषय त्रिकाली द्रव्य- ऐसे दो भेद

करने से तो विकल्प खड़ा होता है। इसलिए पाठ में 'शुद्धनयातम आतमा' कहा है; परन्तु उसके अर्थ में भेद करके समझाया है कि "शुद्धनय के विषयभूत आत्मा का अनुभव ही ज्ञान सम्पदा है।" समयसार की ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ त्रिकाली वस्तु को ही शुद्धनय कहा है। एकरूप त्रिकाल सदृश स्वभाव ही शुद्धनय है। शुद्धनय और उसका विषय- ऐसे दो भेद उसमें नहीं है। सदा त्रिकाल परम पारिणामिक द्रव्य-स्वभाव स्वयं ही शुद्धनयस्वरूप है।

अहा! शुद्धनयस्वरूप भगवान आत्मा माने पवित्र स्वभाव का धाम- ऐसा चैतन्य प्रभु का ध्यान, वह अनुभूति है, वह पर्याय है। आत्मा के आनन्द की स्वसंवेदन दशा, वह अनुभूति है। वह दशा गुरु की सेवा या भक्ति से प्राप्त हो, वैसी नहीं है। अपना गुरु स्वयं होवे, तब ऐसी अनुभूति प्रकटती है। स्वयं ही देव और स्वयं ही गुरु है। अपना पूर्ण स्वरूप देव है और उसका साधन गुरु है।

यहाँ काव्य की दो पंक्तियों में दो बातें कर दी हैं। एक तो वस्तु शुद्धनय स्वरूप है और दूसरी उसकी अनुभूति, वह ज्ञान की विभूति-सम्पदा है। अनादि से पुण्य-पाप के राग का वेदन था, वह दु:खरूप आकुलतावाला था। वह पलट कर स्वभाव के आश्रय से जो स्वसंवेदन प्रकट होता है, वह सुखरूप आनन्द का वेदन है। वह आत्मा की विज्ञान-विभूति है।

यह धर्म की प्रथम सीढ़ी की शुरूआत की बात है। वस्तु ऐसी निरालम्ब है कि उसकी बात सुने, परन्तु अन्दर में बैठना कठिन पड़ता है। कारण कि इसका अभ्यास नहीं है। सर्वज्ञ वीतराग परमदेव की वाणी में तो यह आया है कि तेरा आत्मा ही भगवान है और उसका अनुभव वह तेरी विभूति और विज्ञानघन सम्पदा है। जड़ सम्पत्ति तो तेरी सम्पदा नहीं; परन्तु व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प भी तेरी सम्पदा नहीं है। व्यवहार से निश्चय होता है -यह बात ही खोटी है। विरुद्धभाव से अविरुद्धभाव किसप्रकार हो? व्यवहार से निश्चय विरुद्ध है और निश्चय से व्यवहार विरुद्ध है। अत:

व्यवहार रत्नत्रय के विकल्परूप साधन से आत्मा की निश्चय सम्पदा नहीं प्रकटती।

लोग ऐसा मानते हैं कि पहले व्यवहार हो तो फिर निश्चय होता है। भाई! निश्चय बिना व्यवहार कहना किसको? पहले बिन्दी और बाद में एक- ऐसा कभी होता है? सर्वज्ञ वीतराग देव ने तो ऐसा धर्म प्ररूपित नहीं किया है। केवली द्वारा प्ररूपित निश्चय धर्म ही शरणरूप है। पॉच-दश हजार रूपये खर्च कर देने से धर्म हो जाये- ऐसा नहीं है।

प्रश्नः- तो फिर दान में पैसे लगाये हो वे तो देना नहीं है न?

पूज्य गुरुदेवश्रीः- भाई! पैसा देना, वह आत्मा का धर्म नहीं; वैसे ही पैसे रखना, वह भी आत्मा का धर्म नहीं। जड़वस्तु को देना या रखना, वह आत्मा का कार्य नहीं है। ये पैसे मेरे है और मैं दे सकता हूँ- ऐसी एकता मानी है, वह तो मिथ्यात्व है। उसने अजीव को जीव माना है, परन्तु धर्मी को पैसा दान में देने का शुभभाव आये बिना रहता नहीं है।

'वस्तु विचारत एक पदारथ, नाम के भेद कहावत दोई'- आत्मा का अनुभव कहो या ज्ञान का अनुभव कहो-दोनो एक ही है। ज्ञान की अनुभूति और आत्मा की अनुभूति-ऐसे दो शब्द भले ही हों परन्तु वस्तु एक ही है, उसमें भेद नहीं है। आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है अतः गुणी का अनुभव और गुण का अनुभव ऐसे नामभेद है, वस्तु भेद नहीं।

श्रोताः- साहब! हमें करना क्या? वह कहो न?

पूज्य गुरुदेवश्रीः- यह अनुभूति करनी यही करना है। कुछ क्रिया करे, व्रत करे, यात्रा करे, मन्दिर बनवाये ये कोई तेरी धार्मिक क्रिया नहीं, वह तो शुभभाव है। और जड़ में फेरफार हो, वह जड़ की क्रिया है। तो प्रश्न होता है कि ऐसे शुभ- भाव नहीं करना न? भाई! करने न करने का प्रश्न ही नहीं है। ऐसे भाव होते हैं, आ जाते हैं; अतः वे करने योग्य हैं या वस्तु का स्वरूप है- ऐसा नहीं।

'यों सरवंग सदा लखि आपुहि'- स्वयं अपने से अपने ज्ञायकभाव

स्वरूप निज आत्मा की पहचान करके उसका अनुभव करना, गुण और गुणी अभेद है- ऐसा अनुभव स्वयं अपने से करना। उसमें व्यवहार की अपेक्षा नहीं है। आत्मा और ज्ञान सर्वांग एक स्वरूप है, सदा एकरूप है- ऐसा जानना।

'आतम ध्यान करे जब कोई'- निमित्त, राग और मन के संग की अपेक्षा छोड़कर स्वयं अपने से जब अपना अनुभव करे, तब शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होती है। आत्मा का ध्यान करके आत्मा का अनुभव करे तब उसे जो अशुद्ध राग-द्वेषादि का अनुभव था, उसका नाश होकर शुद्धस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् वेदन होता है। उसका नाम समकित है, वही धर्म है।

'मेटि असुद्ध विभाव दसा तब'- अर्थात् राग के समस्त विकल्पों से छूटकर, गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी राग है; वह अशुद्धता है, उसे छोड़कर अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर जब स्वभाव की दृष्टि में आया, तब उसे स्वरूप की प्राप्ति होती है।

देखो! इसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन सिद्ध किये हैं। भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्धस्वरूप, वह ध्रुव, उसका ध्यान करने से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है और रागादि की मलिन पर्याय का व्यय होता है। इसप्रकार 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्त सत्'- यह द्रव्य का लक्षण है।

लोग तो जीवदया में जैनधर्म मानते हैं, परन्तु जीवदया तेरी या पर की ?इसका विचार किया! भगवान तेरी अपनी दया ही धर्म है। पर की दया में तो परसन्मुखता होती है, विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह तो बंध का कारण है, धर्म नहीं। चैतन्य भगवान अपने स्वभाव अनुसार परिणमे, तब अशुद्धदशा टले और शुद्धदशा प्रकट हो वह धर्म है। यह धर्म पाने की कला और रीति है।

आत्मा गुणी है और ज्ञान उसका गुण है, उनमें प्रदेशभेद नहीं है। जैसे शक्कर है वहीं मिठास है। शक्कर और मिठास के अंश अलग-अलग नहीं हैं; वैसे ही भगवान आत्मा और ज्ञान के प्रदेश अलग-अलग नहीं है। जिस भाग में आत्मा है, उसी भाग में ज्ञान है। ज्ञान और आत्मा में कहीं भिन्नता नहीं।

.....शेष पृष्ठ 32 पर

गतांक से आगे....

आत्मा कौन है और किसप्रकार प्राप्त हो ?

(श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में 47 नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार)

नय एक धर्म को मुख्य करके जानता है, किन्तु वस्तु में अनंत धर्म एकसाथ ही हैं। जहाँ रंग हो, वहाँ उसके साथ ही गंध, रस और स्पर्श भी होते ही हैं। वर्ण-गंध-रस और स्पर्श - यह सब पुद्गल के धर्म हैं, उनमें से एक हो और दूसरे न हों, ऐसा नहीं हो सकता। जहाँ एक धर्म हो, वहाँ अन्य सभी धर्म भी साथ ही विद्यमान हैं। उसीप्रकार आत्मा में ज्ञानादि अनंत धर्म हैं, उनमें से किसी एक धर्म को मुख्य करके कहा, वहाँ वस्तु में दूसरे अनंत धर्म भी साथ में ही हैं, उन्हें जाने, वह ज्ञान प्रमाण है।

आत्मा में अनंत धर्म हैं, आत्मा अनंत धर्मोंवाला एक स्वतंत्र द्रव्य है, उसे जाननेवाला श्रुतज्ञान अनंत नयों के समूहरूप है, ऐसे श्रुतज्ञान प्रमाण से स्वानुभव द्वारा आत्मा ज्ञात होता है। केवली भगवान को तो आत्मा पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, उनके लिए यह वर्णन नहीं है, यहाँ तो साधक जीव के लिए वर्णन है, इसलिए श्रुतज्ञान और नय से वर्णन किया है। साधक जीव श्रुतज्ञान प्रमाण से आत्मा को जानता है, वह श्रुतज्ञान अनंत नयोंवाला है, उनमें से प्रत्येक नय आत्मा के प्रत्येक धर्म को जानता है।

यहाँ द्रव्यनय से आत्मा कैसा है, वह बात चल रही है। द्रव्य धर्म से अर्थात् सदृश एकरूप चिन्मात्र स्वभाव से आत्मा को लक्ष में ले उसका नाम द्रव्यनय है। आत्मा के अनंतधर्मों में एक ऐसा धर्म है कि आत्मा एकरूप सदृश है। उस धर्म को द्रव्यनय जानता है। वस्तु में जो धर्म हो, उसी का ज्ञान होता है। यदि वस्तु में धर्म न हो तो उसका ज्ञान भी कैसे हो ? आत्मा में कैसे-कैसे धर्म हैं, उसका यहाँ वर्णन करते हैं। चिन्मात्ररूप से नित्य सदृशरूप स्थायी रहना ऐसा आत्मा का अपना स्वभाव है, इसलिए आत्मा किसी पर के आधार से स्थायी नहीं है, कोई ईश्वर उसे स्थायी (नित्य

टिकानेवाला) रखनेवाला नहीं है, किन्तु स्वयं अपने चिन्मात्र स्वभाव से स्थित है, ऐसा उसका एक धर्म है। एक-एक धर्म में ही सम्पूर्ण आत्मा का समावेश नहीं हो जाता, किन्तु अनंत धर्मों का एकरूप पिण्ड आत्मा है, उसीप्रकार एक-एक नय में सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान नहीं आ जाता, किन्तु सभी नय एकत्रित होकर सम्पूर्ण वस्तु का प्रमाण ज्ञान होता है। आत्मा के अनंत धर्मों में चैतन्यमात्रपना वह एक धर्म है, उस धर्म से चैतन्यमात्र आत्मा को जाने, सो द्रव्यनय है।

जिस धर्म को जो नय जाने, उस धर्म का उस नय में आरोप होता है, इसलिए द्रव्यधर्म को जाने, उस नय को द्रव्यनय कहा; पर्याय धर्म को जाने, उस नय को पर्याय नय कहा; अस्तित्व धर्म को जाने, उस नय को अस्तित्वनय कहा। इसप्रकार 47 नयों द्वारा आत्मा कैसा ज्ञात होता है, वह आचार्यदेव बतलाते हैं। नय वस्तु के एक धर्म को मुख्य करके जानता है और प्रमाण समस्त धर्मों को एकसाथ जानता है। वस्तु तो एक साथ अनंत धर्म का पिण्ड है। 47 नयों से आत्मा का वर्णन करके अंत में आचार्यदेव ऐसा कहेंगे कि - **स्याद्वाद के आधीन प्रवर्तमान नय समूह द्वारा जीव देखे, तथापि अनंत धर्मों वाले अपने आत्मा को अंतर में शुद्ध चैतन्यमात्र देखता ही है। इसलिए चाहे जिस नय से वर्णन किया हो किन्तु अपने आत्मा को शुद्ध चैतन्यमात्र देखना ही समस्त नयों का प्रयोजन है, किसी भी एक सम्यक्नय से देखनेवाला अपने शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा को देखता है।**

देखो ! जगत में अनंत आत्मा हैं और उस प्रत्येक आत्मा में अनंत धर्म हैं - ऐसा वस्तुस्वरूप जो कहते हों, वे ही देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं। जगत में भिन्न-भिन्न अनंत आत्मा हैं और प्रत्येक आत्मा में अनंत धर्म हैं, इसे जो स्वीकार न करते हों, वे कोई देव-गुरु या शास्त्र सच्चे नहीं हैं, ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को जो माने, उसे तो अभी व्यवहारश्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है, वह तो धर्म से बहुत दूर है। वस्तु का स्वरूप जिसप्रकार से है,

उसीप्रकार से ज्ञान में आये बिना स्थिर नहीं होता और ज्ञान स्थिर हुए बिना विकल्प नहीं टूटता अर्थात् चित्त का निरोध नहीं होता। वस्तुस्वरूप को यथावत् जानकर जहाँ ज्ञान उसमें एकाग्र हो, वहाँ राग या विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती, इसी का नाम चित्त का निरोध है। इसके अतिरिक्त 'मैं चित्त को रोकूँ' इसप्रकार नास्ति के लक्ष से कहीं विकल्प नहीं टूटता किन्तु विकल्प उत्पन्न होता है। 'मैं चैतन्यमात्र स्वभाव हूँ' – इसप्रकार अस्ति स्वभाव की ओर ज्ञान का बल देने से चित्त का निरोध सहज ही हो जाता है। स्वभाव की एकाग्रता के बल से राग का अभाव हो जाता है, इसलिए प्रथम वस्तु के स्वभाव को सभी पक्षों से यथावत् जानना चाहिए। उसका यह वर्णन चल रहा है।

यहाँ जो द्रव्यनय कहा उसका विषय तो एक ही धर्म है और समयसारादि में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक – ऐसे दो ही मुख्य नय लिए हैं, उसमें जो द्रव्यार्थिकनय है, उसका विषय तो अभेद द्रव्य है। यहाँ जो द्रव्यनय कहा है, वह तो वस्तु में भेद पाड़कर उसके एक धर्म को लक्ष में लेता है और द्रव्यार्थिकनय तो भेद पाड़े बिना वर्तमान पर्याय को गौण करके अभेद द्रव्य को लक्ष में लेता है। इसप्रकार दोनों के विषय में बहुत अन्तर है। समयसार में कहा हुआ शुद्ध निश्चयनय का जो विषय है, वह इस द्रव्यनय का विषय नहीं है, उस निश्चयनय का विषय तो वर्तमान अंश को तथा भेद को गौण करके सम्पूर्ण अनन्तगुण का पिण्ड है और यह द्रव्यनय तो अनंत धर्मों में से एक धर्म का भेद करके विषय करता है।

अध्यात्मदृष्टि से नयों में तो निश्चय और व्यवहार (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) ऐसे दो ही भाग पड़ते हैं और यहाँ तो अनंत नयों को लेना है। वहाँ दो नयों में पूर्ण प्रमाण समा जाता है और यहाँ तो श्रुतप्रमाण के अनंतनय कहे। यहाँ कहे हुए नयों का विषय एक-एक धर्म है और समयसारादि में कहे हुए द्रव्यार्थिकनय का विषय तो धर्म के भेद से रहित अभेद वस्तु है। यहाँ जिसे द्रव्यनय कहा है, उसे अध्यात्मदृष्टि के कथन में

तो पर्यायार्थिक नय में अथवा व्यवहार नय में जाता है।

इस परिशिष्ट में ज्ञान प्रधान वर्णन है, प्रमाण से वर्णन है, इसलिए बंध-मोक्ष पर्याय की गणना भी निश्चय से करेंगे, जबकि समयसारादि में कहे हुए निश्चयनय के विषय में तो आत्मा को बंध-मोक्ष है ही नहीं। इसप्रकार भिन्न-भिन्न अपेक्षा से जैसा कहा है, वैसा बराबर समझना चाहिए।

द्रव्यनय से आत्मा चैतन्यमात्र है, यह बात की, अब उस द्रव्यनय के सन्मुख पर्यायनय की बात करते हैं।

2. पर्यायनय से आत्मा का वर्णन

अनंत धर्मात्मक आत्मद्रव्य है, वह पर्यायनय से, तंतुमात्र की भांति, दर्शनज्ञानादि मात्र है। जिसप्रकार वस्तु तंतुमात्र है, उसीप्रकार आत्मा पर्यायनय से दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि मात्र है।

पर्यायनय श्रुतज्ञान का प्रकार है, उस पर्यायनय से देखने पर आत्मद्रव्य दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि मात्र ज्ञात होता है। द्रव्यनय से अभेद एकरूप चैतन्यस्वभाव मात्र ज्ञात होता है और पर्यायनय से वह आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुण-पर्याय के भेदवाला भी ज्ञात होता है - ऐसा आत्मा का स्वभाव है। पर्यायनय से ज्ञानादि अनंत गुण-पर्याय के भेदरूप से आत्मा भासित होता है और द्रव्यनय से एक अभेदरूप चैतन्यस्वभाव मात्र आत्मा ज्ञात होता है। वस्तु एक है किन्तु उसमें पक्ष अनेक हैं। वस्तु को सभी पक्षों से यथावत् जानकर निश्चित करे, उसके पश्चात् ही ज्ञान उसमें स्थिर होगा न? वस्तु के स्वरूप को जाने बिना कहाँ एकाग्र होकर ध्यान करे? जिसप्रकार किसी ने हाथ में धनुष बाण तो लिया, किन्तु वह किसे मारना है? जिस बाण मारना है, उस लक्ष को निश्चित न किया हो तो बाण लेने का अर्थ ही क्या? प्रथम जिस पर बाण छोड़ना हो, उस लक्ष को बराबर निश्चित करने के पश्चात् ही बाण छोड़ते हैं, उसीप्रकार आत्मा का ध्यान करने के लिए प्रथम उसका बराबर ज्ञान करना चाहिए। आत्मा जैसा है, वैसा लक्ष में लिये बिना ध्यान किसका करेगा ? अनेक लोग कहते हैं कि हमें ध्यान करना है,

लेकिन किसका ? ध्यान में लेने योग्य आत्मा का स्वभाव क्या है, उसे जाने बिना उसका ध्यान किस प्रकार करेगा ? वस्तु को यथार्थ ज्ञान से जानने के पश्चात् उस वस्तु में ज्ञान की एकाग्रता हो, उसका नाम ध्यान है, जिसे वस्तु का सच्चा ज्ञान ही नहीं है, उसे तो ज्ञान की एकाग्रतारूप ध्यान भी नहीं होता।

जिस प्रकार वस्त्र सामान्यरूप से एक होने पर लम्बा-चौड़ा, रंगीन तथा ताना-बाना वाला - ऐसे भेदरूप से भी ख्याल में आता है, उसीप्रकार चैतन्य बिम्ब भगवान आत्मा द्रव्यरूप से एक होने पर भी उसमें दर्शन-ज्ञानादि अनंत धर्म भरे हैं, इसलिए पर्यायनय से वह दर्शन-ज्ञानादि भेदरूप है। द्रव्यनय से देखने पर भेद गौण होकर एकरूप चिन्मात्र भासित होता है और पर्यायनय से देखने पर दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि गुण-पर्यायों के भेदरूप भी भासित होता है - ऐसा आत्मा का स्वभाव है। आत्मा में ज्ञान-दर्शन आदि भेद हैं, वे कहीं कल्पनारूप नहीं हैं, किन्तु सत् हैं, वस्तु में कथंचित् गुणभेद भी हैं, वस्तु सर्वथा अभेद नहीं है, किन्तु भेदाभेदरूप है। ऐसी वस्तु ही प्रमाण का विषय है।

तीनों काल पर्याय होने का आत्मा का स्वभाव है। वस्तु में गुणभेद पड़े, उन्हें भी पर्याय कहा जाता है और विशेष अवस्था हो, उसे भी पर्याय कहा जाता है।

द्रव्यनय से वस्तु नित्य एकरूप होने पर भी पर्यायनय से उसमें त्रिकाल नवीन-नवीन अवस्थाएँ होती रहती हैं, ऐसा उसका स्वभाव है। आत्मा की कोई पर्याय पर के कारण नहीं होती, किन्तु अपने पर्याय स्वभाव से ही उसकी पर्याय त्रिकाल होती रहती है। आत्मा में पर्याय धर्म कब नहीं है ? सदैव है। यदि आत्मा के पर्याय धर्म को जाने तो पर के आश्रय से अपनी पर्याय होना नहीं माने, किन्तु द्रव्य के आश्रय से ही पर्याय का होना माने, इसलिए पर से लाभ-हानि होते हैं, ऐसी मिथ्याबुद्धि नहीं रहे। यदि पर से अपनी पर्याय में लाभ-हानि माने तो वास्तव में उसने आत्मा के पर्याय धर्म को नहीं जाना है।

द्रव्यनय से आत्मा निगोद से सिद्ध तक सदैव एकरूप है, अल्प पर्याय अथवा अधिक पर्याय - ऐसे भेद उसमें नहीं हैं, किन्तु पर्यायनय से वह भेदरूप है। संसार-मोक्ष ऐसी पर्यायरूप से आत्मा स्वयं परिणमित होता है। पर्याय धर्म अपना है, किसी दूसरी वस्तु के कारण उसका पर्याय धर्म नहीं होता। यदि दूसरा पदार्थ आत्मा की पर्याय करे तो आत्मा के पर्याय धर्म ने क्या किया ? यदि, निमित्त से पर्याय हुई - ऐसा हो तो आत्मा का पर्याय धर्म ही न रहा। अपनी अनादि-अनंत पर्यायें अपने से ही होती हैं - इसप्रकार यदि अपने पर्याय धर्म को न जाने तो ज्ञान प्रमाण नहीं होता। स्वभाव की ओर ढलनेवाला ज्ञान प्रमाणपूर्वक ही ढलता है, वस्तुस्थिति को समझकर ज्ञान प्रमाण हुए बिना वह वस्तु स्वभाव में ढलता ही नहीं, इसलिए उसे आत्मा का स्वानुभव नहीं होता।

यदि द्रव्यनय से भी आत्मा को संसार हो तो वह संसार नित्य बना ही रहे और यदि पर्यायनय से भी आत्मा को संसार न हो तो आत्मा की मुक्ति ही होना चाहिए। इसलिए दोनों नयों से वस्तु के स्वरूप को जानना चाहिए। यदि आत्मा में द्रव्यनय से संसार हो तो वह दूर कैसे होगा ? और पर्याय में संसार है, वह पर्याय के अवलम्बन से कैसे दूर हो सकता है ? द्रव्यनय से तो आत्मा को संसार-मोक्ष नहीं है, संसार पर्याय में या मोक्ष पर्याय में सदैव आत्मा चिन्मात्र ही है, परन्तु पर्याय में संसार-मोक्ष है, उसे पर्यायनय जानता है, किन्तु उस पर्याय के आश्रय से संसार दूर नहीं होता, द्रव्य का आश्रय करने से संसारपर्याय दूर होकर मोक्षपर्याय हो जाती है, इसलिए पर्यायनय वाला भी पर्यायबुद्धि रखकर पर्याय को ही नहीं जानता, किन्तु द्रव्य पर दृष्टि रखकर पर्याय का ज्ञान करता है। द्रव्य की दृष्टि बिना मात्र पर्याय को जानना चाहे तो उसे पर्यायबुद्धि का मिथ्यात्व हो जाता है। सम्पूर्ण द्रव्य के ज्ञानपूर्वक उसके पर्यायधर्म को पर्यायनय जानता है, उस पर्यायनय से आत्मद्रव्य गुण-पर्याय के भेदवाला ज्ञात होता है।

द्रव्यदृष्टि से जो वस्तु सामान्य एकरूप रहती है, वही पर्यायदृष्टि से प्रतिसमय बदलती है, यदि पर्यायदृष्टि से भी वह जैसी की तैसी ही बनी रहती हो तो वह प्रतिसमय जो विशेष कार्य होता है, वह भी नहीं हो सकेगा अथवा विशेष के बदलने से सामान्य पृथक् रह जायेगा, इसलिए सामान्य और विशेष सर्वथा पृथक् हो जायेंगे। किन्तु ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि सामान्य कभी विशेष के बिना नहीं होता। वस्तु अनेक धर्मात्मक है, सामान्य विशेष दोनों को एक साथ न माने तो वस्तु ही सिद्ध नहीं होगी।

नय से विचार करनेवाला भी, समस्त धर्मों का समुदाय, सो आत्मा है – ऐसा लक्ष में रखकर उसके एक-एक धर्म को भेद करके विचार करता है, तत्त्व के विचारकाल में ऐसे धर्मों से वस्तु को निश्चित करना चाहिए। तत्त्व का निर्णय करके अभेद चैतन्यस्वभाव पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। जहाँ अभेद स्वभाव के अनुभव में ढला, वहाँ ऐसे धर्म के भेद से विचार नहीं रहते।

नय एक धर्म को देखने पर भी दृष्टि में तो सम्पूर्ण वस्तु आ जाती है और तभी एक धर्म के ज्ञान को नय कहा। नय कहते ही वस्तु का एक पक्ष आया, इसलिए दूसरे पक्ष बाकी (शेष) हैं, ऐसा भी उसमें आ गया। नय एक धर्म को मुख्य करके वस्तु को लक्ष में लेता है, वह धर्म वस्तु का है और वस्तु अनंत धर्मवाली है, इसलिए नय के साथ ही उस अनंत धर्म वाली वस्तु का प्रमाण ज्ञान भी साथ ही है। नय तो अंश को जानता है। अंश किसका ? अंशी का। अंशी के ज्ञान बिना अंश का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। सम्पूर्ण वस्तु के प्रमाणज्ञानपूर्वक उसके एक अंश का ज्ञान हो, तभी उसे नय कहा जाता है। इसप्रकार नय के साथ प्रमाण भी है।

इसप्रकार द्रव्यनय और पर्यायनय – इन दो नयों से आत्मा का वर्णन किया, अब अस्तित्वनय आदि सात नयों से आत्मा के अस्ति-नास्ति आदि सात धर्मों का वर्णन करते हैं।

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 12

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

इन तीन केवली भगवन्तों ने 62 वर्षों तक उत्कृष्ट साधना के द्वारा जगत को महावीर के सदृश केवलज्ञान प्राप्त कर उपदेशामृत का पान कराया और तत्पश्चात् निर्वाण प्राप्त किया।

पाँच श्रुतकेवली –

विष्णुनन्दि	14 वर्ष
नन्दिप्रिय	16 वर्ष
अपराजित	22 वर्ष
गोवर्धन	19 वर्ष
भद्रबाहुस्वामी	29 वर्ष

ये आचार्य केवलज्ञान के स्थान पर पूर्ण श्रुतज्ञान ही प्राप्त कर सके, अत: श्रुतकेवली कहलाये। इनमें भद्रबाहु स्वामी अंतिम श्रुतकेवली थे।

ग्यारह अंग, दस पूर्वधारी आचार्य –

विशाखाचार्य	10 वर्ष
प्रोष्ठिल	19 वर्ष
क्षत्रिय	17 वर्ष
जयाचार्य	21 वर्ष
नागाचार्य	18 वर्ष
सिद्धार्थ स्थविर	17 वर्ष
धृतिसेन	18 वर्ष
विजयाचार्य	13 वर्ष
बुद्धिल्ल	20 वर्ष
गंगदेव	14 वर्ष
धर्मसेन	16 वर्ष

इस प्रकार 183 वर्षों में 11 आचार्य हुए, जो ग्यारह अंग और दस पूर्वधारी आगमवेत्ता थे। ये न तो केवली थे और न ही श्रुतकेवली, फिर भी ये आगम-शास्त्रों के अधिकांश भाग के ज्ञाता था। *क्रमश:*

साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव श्री लघु अनन्तवीर्य

आपकी 12000 श्लोकप्रमण रचना 'प्रमेयरत्नमाला' से यह ज्ञात होता है, कि आप स्वयं जानते थे, कि आपके पूर्व में अनन्तवीर्य आचार्य हुए हैं, क्योंकि श्री प्रभाचन्द्रचार्यदेव ने अपने न्यायकुमुदचन्द्र में सिद्धिविनिश्चय टीका के रचयिता आचार्य अनन्तवीर्य का स्मरण किया है, व आपने अपनी 'प्रमेयरत्नमाला' में आचार्य प्रभाचन्द्रजी का बहुमान से स्मरण किया होने से यह स्पष्ट है, कि आपके पूर्व में अनन्तवीर्य आचार्य हुए हैं। अत: 'सिद्धिविनिश्चय-टीका' के रचयिता भगवान आचार्य अनन्तवीर्य से अपनी भिन्नता दर्शाने के लिए आपने स्वयं को 'लघु अनन्तवीर्य, बताया है।

आचार्यदेव ने परीक्षामुख ग्रंथ की संक्षिप्त, किन्तु विशद व्याख्या की है। साथ ही उसमें चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैशैषिक, मीमांसक व वेदन्तादि दर्शनों के कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का स्पष्ट एवं निराकरण भी किया है।

आपके ग्रंथ के टिप्पण करने इस ग्रंथ को 'प्रमेयत्नमाला' बताया है, यह नाम पूर्णत: सार्थक है, क्योंकि यह विविध साहजिक प्रमेयरूपी रत्नों की कभी नहीं छँटनेवाली माला है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में आपने स्वयं इस टीका का नाम 'परीक्षामुख-पन्जि का' निर्देश दिया है व स्वयं ही प्रत्येक समुदेश के अन्त की 'पुष्पि का वाक्य' में 'परिक्षामुख लघुपत्ति; बताया है। जो भी हो, परन्तु आजकल यह 'प्रमेयरत्नमाला' के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथ है।

यह ग्रंथ न्यायशास्त्र के जिज्ञासुओं को सर्वदा न्यायषास्त्र बोध कराता रहेगा। यह भावना मात्र ही नहीं, परन्तु यह ग्रंथ आजकल जैन न्याय के अध्ययन हेतु विद्यालयों व महाविद्यालयों तक में पाठ्य पुस्तक के रूप में आदरणीय व पठनीय हो रहा है।

यह रचना एक व्यक्ति विशेष के निमित्त से बनाई गई है। आचार्यदेव ने स्वयं इस ग्रंथ के प्रारम्भ में तथा अन्त में स्पष्ट उल्लेख किया है, कि 'आपने यह टीका वैजेय के प्रिय पुत्र हीरप के अनुरोध से शान्तिषेण के पठनार्थ रची है।' यद्यपि वैजेय के ग्राम का पता स्पष्ट नहीं है, पर हीरप बदरीपाल वंशय जाति का

ओजस्वी सूर्य था, ऐसा निर्देश किया है। उनकी (वैजय की) पत्नी का नाम नाणाम्बा था। जो अपने विशिष्ट गुणों के कारण रेवती, प्रभावती आदि नामों से प्रसिद्ध थी। उसके दानवीर हीरप नामक पुत्र हुआ; जो सम्यक्तरूप रत्नों से सुशोभित था। तदुपरांत वह लोकहित कार्यों को करने के लिए प्रसिद्ध था। उनके आग्रह से सम्भवत: उन्हीं के पुत्र- शान्तिषेण के पढ़ने हेतु यह लघुवृत्ति बनाई होगी।

आपका यह एक मात्र 'प्रमेयरत्नमाला' ग्रंथ ही है। इसमें भी परीक्षामुख भांति प्रमाण व प्रमाणाभासों की विशद चर्चा है।

आपका समय ईसा की 12वीं शताब्दी का मध्यपाद प्रतीत होता है।

'प्रमेयरत्माला' ग्रंथ रयिचता आचार्यदेव लघु अनन्तवीर्यजी को कोटि कोटि वंदन।

.... पृष्ठ 8 का शेष

है, वैसी उसकी प्रगट दशा पूर्ण आनन्द हो, वह मोक्षरूपी आत्मा की लक्ष्मी, उसका निबन्धन-उपाय, हेतु कौन ? अहिंसा जिनप्रणीत धर्म। विकल्प, पुण्य, दया, दान के विकल्परहित आत्मा की दया के जो परिणाम, आत्मा की दया के परिणाम—ऐसा वीतराग द्वारा कथित वीतरागी अहिंसाभाव, उसमें प्रेम करना और उस धर्मसहित ऐसे, और उस धर्मसहित, ऐसे धर्मवाला, ऐसे धर्मवाला। **ऐसे सभी साधर्मियों में...** अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर मुनि दिगम्बर आत्मज्ञानी-ध्यानी, निर्मलानन्द की दशा को प्राप्त हुए, उनके प्रति प्रेम करना। **उत्कृष्ट वात्सल्य निरन्तर रखना चाहिए।** कहो, समझ में आया ? इससे उनके विरुद्ध के प्रति द्वेष करना ऐसा नहीं। ऐसा नहीं यहाँ कोई नहीं कहना है। समझ में आया ? धर्मी को किसी के प्रति द्वेष नहीं होता। अन्यमत के स्थापित देव, कुदेव, प्रतिमा आदि हो तो भी उनका कोई अनादर करे या ऐसा नहीं हो सकता। द्वेष, द्वेष नहीं होता। समझ में आया ? जगत में अनेक अभिप्रायवाले प्राणी होते हैं और उनके प्रमाण में उनके माने हुए देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करते हों, उनमें कोई द्वेष का कारण नहीं है। न्यालभाई ! द्वेष किसी के प्रति नहीं होता। वीतराग धर्म तो राग-द्वेष रहित है। समझ में आया ?

....पृष्ठ 21 का शेष

जैसे अग्नि का गुण उष्णता है। तो कोई अग्नि और उष्णता को भिन्न करना चाहे तो नहीं हो सकता। अग्नि के अभाव में उष्णता और उष्णता के अभाव में अग्नि नहीं रहती; वैसे ही ज्ञान और आत्मा का सहभावी सम्बन्ध है, वह कभी भिन्न नहीं हो सकता। यहाँ यह ज्ञानगुण की बात है, पर्याय की बात नहीं। आत्मा का 'स्व' भाव ज्ञान और आत्मा स्वयं, स्वभाव और स्वभाववान दोनों का सहभावी सम्बन्ध है। जहाँ आत्मा है, वहाँ ज्ञान है और ज्ञान है वहाँ आत्मा है; गुण-गुणी अभेद है। ध्रुवस्वरूप है।

आत्मा और ज्ञान एक ही है, अत: आत्मा के अनुभव करने को धर्म कहो या ज्ञान का अनुभव करना कहो एक ही है। देह के रजकण या राग से भिन्न वस्तु कहो या उसका ज्ञानगुण कहो- दोनों एक ही है। नाम भेद है वस्तु भेद नहीं- इसप्रकार 13वें कलश का अर्थ हुआ। क्रमश:

षट्खण्डागम ग्रन्थ की द्वितीय पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध **'षट्खण्डागम धवला टीका सहित'** वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। जिसकी द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से समापन 08 जुलाई 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। इस श्रुतपंचमी पर्व पर श्री षट्खण्डागम ग्रन्थजी ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराके महावीर जिनालय एवं बाहुबली जिनालय में विराजमान किये गये।

तृतीय पुस्तक की वाचना 09 जुलाई 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विद्वान पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर - 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

(विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर)

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

समाचार-दर्शन

अष्टाह्निका महापर्व सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर प्रतिदिन पूजन-प्रक्षाल के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचनसार ग्रन्थाधिराज पर सी.डी. प्रवचन तथा डॉ. सचिन्द्र जैन का प्रवचनसार पर स्वाध्याय एवं दोपहर में श्री जे. पी. दोशी, मुम्बई एवं प्रो. जयन्तीलाल जैन, मंगलायतन विश्वविद्यालय द्वारा षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना तथा सायंकालीन भक्ति के बाद बालब्रह्मचारी कल्पनाबेन द्वारा मूलाचार और समयसार की वाचना का लाभ प्राप्त हुआ।

टीकमगढ़ : आषाढ़ मास की अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर श्री सीमन्धर जिनालय ज्ञानमन्दिर में मंगलमय नवलब्धि विधान का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित मयंक ठगन शास्त्री, मङ्गलार्थी सर्वार्थ जैन के सहयोग से सम्पन्न हुआ। प्रात:कालीन स्वाध्याय में विदुषी बालब्रह्मचारिणी मीना दीदी का नवलब्धियों के स्वरूप पर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अरविन्द जैन, पण्डित विकास जैन, पण्डित राजेश जैन, पण्डित आशीष जैन, पण्डित कमलेश जैन के श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार के आधार पर सम्यक् रत्नत्रय और श्रावकाचार विषयों पर स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

गौरझामर : श्री 1008 शान्तिनाथ जिनालय गौरझामर में अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर प्रतिदिन पूजन-प्रक्षाल के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का समयसार ग्रन्थाधिराज पर सी.डी. प्रवचन तथा जबलपुर से पधारे बालब्रह्मचारी डॉ. मनोज जैन का प्रात: समयसार, दोपहर रत्नकरण्ड श्रावकाचार, रात्रि में भक्ति के पश्चात् मृत्यमहोत्सव पर सारगर्भित स्वाध्याय का लाभ सम्पूर्ण मुमुक्षु को प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर पाठशाला के बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

बहुत-बहुत बधाई

आई.पी.एस. मङ्गलार्थी अगम जैन, मध्यप्रदेश शासन गृह विभाग ने भारतीय पुलिस सेवा के वर्ष 2016 बैच के अधिकारी अगम जैन को राज्यपाल का परिसहाय (एडीसी) नियुक्त किया है। श्री अगम जैन वर्तमान में पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र इन्दौर में पदस्थ थे। ज्ञात हो कि आप तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के होनहार मङ्गलार्थी छात्र रहे हैं। मङ्गलायतन परिवार इस अवसर पर हार्दिक बधाई देता है।

मङ्गलार्थी छात्रों का परीक्षा परिणाम घोषित

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अध्ययनरत मङ्गलार्थी छात्रों का दिल्ली पब्लिक स्कूल अलीगढ़ का परीक्षा परिणाम इस प्रकार रहा—

कक्षा - 10

मङ्गलार्थी हित जैन, भोपाल	92.8	मङ्गलार्थी अंश जैन, मौ	76.8
मङ्गलार्थी सिद्धार्थ जैन, इन्दौर	90.8	मङ्गलार्थी सार्थक जैन	74.3
मङ्गलार्थी स्मित जैन, झाँसी	89.3	मङ्गलार्थी समकित जैन, भिण्ड	74.2
मङ्गलार्थी नील जैन	89.0	मङ्गलार्थी अक्षत जैन	72.8
मङ्गलार्थी ईशान जैन, कोटा	84.2	मङ्गलार्थी ईशान जैन, करेली	71.2
मङ्गलार्थी दर्श जैन, ललितपुर	83.8	मङ्गलार्थी वासु जैन	69.8
मङ्गलार्थी अर्चित जैन, ललितपुर	82.2	मङ्गलार्थी उदित जैन, पथरिया	62.0

कक्षा - 12

मङ्गलार्थी शुभम जैन, एटा	91.0
मङ्गलार्थी निशित जैन, जबलपुर	88.8
मङ्गलार्थी सर्वज्ञ जैन, दिल्ली	86.2
मङ्गलार्थी दर्शिल सेठी, झालरापाटन	85.2
मङ्गलार्थी अनिमेष जैन, जबलपुर	83.8
मङ्गलार्थी रिधित अजमेरा, भीलवाड़ा	83.4
मङ्गलार्थी चेतन जैन, सिरसागंज	81.4
मङ्गलार्थी पीयूष जैन, करेली	75.6
मङ्गलार्थी अरिन्दम जैन, सनावद	75.0
मङ्गलार्थी अमन जैन, इटारसी	70.6

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार सभी मङ्गलार्थी छात्रों को हार्दिक बधाई एवं उनके लौकिक एवं पारलौकिक उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

अद्‌भुत निर्ग्रन्थता!

आहाहा! मुनि ध्यान में लीन हो जाते हैं। आहाहा! तूफान आवें न बहुत? चलते हुए मनुष्य को उड़ा दे, ऐसा तूफान आवे। चल नहीं सके, उसे उछाल दे। आहाहा! बैठे हुए व्यक्ति को भी पवन का इतना जोर हो कि ऐसे हिला दे। आहाहा! ऐसे प्रसंग में भी मुनिराज आनन्द में झूलते हैं। आहाहा! विशेष आनन्द में जाते हैं। **(बहिनश्री के वचनामृत, प्रवचन, पृष्ठ 412)**

अहा! मुनियों ने जङ्गल में बैठे-बैठे अन्तर में गहरे उतरकर आत्मा को तो साधा ही है और जगत के जीवों के लिए भी उसका स्वरूप स्पष्ट कर दिया है। स्वसंवेदन में जिन्होंने सिद्धों से भेंट की और अल्पकाल में जो स्वयं सिद्ध हो जाएँगे – ऐसे साधक सन्तों का यह कथन है। **(- आत्मधर्म, गुजराती, वर्ष 21, अङ्क 241, पृष्ठ 3)**

मुनि मानो 'चलते-फिरते सिद्ध' हों – ऐसी उनकी अद्‌भुत दशा है। मुक्तिसुन्दरी कहती है कि 'मैं ऐसे शुद्ध रत्नत्रय के साधक मुनिवरों का ही वरण करती हूँ।' ऐसे मोक्षमार्गी मुनिवर ही मुक्तिसुन्दरी के नाथ होते हैं। 'जय हो उन मुक्ति-सुन्दरी के नाथ की!'....

(आत्मधर्म (हिन्दी) क्रमाङ्क 130 से साभार)

मुनिराज तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज करते हैं। उन्हें ही मुनि कहा जाता है, जो अमृत-आनन्द के झरने का अनुभव करते हैं। मुनिराज अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद से तृप्त होकर विषयों से अपने को भिन्न जानते हैं – ऐसे मुनि को हम नमस्कार मन्त्र में नमस्कार करते हैं।

(परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 2, पृष्ठ 212)

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

आप मुनि को मानते हैं ?

भाई ! सुन तो सही, मुनि के तो हम दासानुदास हैं, परन्तु उनमें सच्चा मुनिपना होना चाहिए। अहा ! मुनिदशा अर्थात् क्या ? भाई ! मुनि तो परमेश्वरपद की केवलज्ञान भूमिका के निकट आ गये हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप धारावाही परिणमन प्रगट हुआ हो, उसे मुनि कहते हैं। अहा ! धन्य अवतार ! धन्य जीवन ! ऐसे मुनि को कौन नहीं मानेगा ? यहाँ कहते हैं कि ऐसे अगाध शक्तिवान चैतन्यचक्रवर्ती को ग्रहण कर, उसका अन्तर में उग्र आश्रय कर तो सच्चा मुनिपना प्रगट होगा।

(- गुरुदेवश्री के वचनामृत, पृष्ठ ३११)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com